

हिन्दू विधि

प्रश्न:-1 स्त्रीधन की अवधारणा की विवेचना की जाए की स्त्रीधन की पुरानी अवधारणा किस सीमा तक हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम 1995 में समाविष्ट की गयी है !

उत्तर:- (1) स्त्री-धन (Stridhan) - हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1956 के पारित होने के पूर्व किसी स्त्री के पास दो प्रकार की सम्पत्ति हो सकती थी-

- (1) वह सम्पत्ति जिस पर उसका पूर्ण स्वामित्व होता था, तथा
- (2) ऐसी सम्पत्ति जिस पर सीमित स्वामित्व होता था।

प्रथम को स्त्रीधन तथा दूसरे को नारी सम्पदा कहा जाता था।

स्त्री-धन का अर्थ-स्त्री-धन शब्द से तात्पर्य नारी की उस सम्पत्ति से है जिस पर उसका पूर्ण स्वामित्व होता है। शब्द स्त्रीधन सर्वप्रथम स्मृतियों में पाया जाता है, और गौतम के धर्मसूत्र में पाया जाता है। वर्तमान हिन्दू विधि में शब्द स्त्रीधन न केवल विशिष्ट प्रकार की सम्पत्ति सचिंत करती है जो स्मृतियों में परिगणित है किन्तु, सम्पत्ति के विभिन्न प्रकारों को परिगणित करती है जो किसी स्त्री द्वारा अर्जित अथवा उसके स्वामित्व में है जिसके ऊपर उसका पूर्ण नियन्त्रण है और ऐसी सम्पत्ति के सम्बन्ध में वह वंशजों की सम्पत्ति का निर्माण करती है जो तदनुसार उसके निजी उत्तराधिकारीगण पर न्यागत होती है। स्त्री-धन की परिभाषा बहुत से स्मृतिकारों ने दी है जिसमें से कुछ निम्नलिखित परिभाषाएँ हैं

हिन्दू विधि

(i) **मनु** के अनुसार, "अध्याग्नि वैवाहिक आदमी के समक्ष दिया गया, अव्यावहारिक है (वधू के जाने के समय दिया गया) स्तम प्रीति कर्मणी (प्रेम में दिया गया) तथा पिता, माता एवं भाई के द्वारा दिया गया छः प्रकार का उपहार स्त्री-धन की कोटि में रखा गया । है

विष्णु के अनुसार, "किसी स्त्री को उसके पिता, माता, पुत्रों अथवा भ्राता द्वारा जो प्राप्त हुआ है जो उसे अध्याग्नि में प्राप्त है. जो वह अपने पति द्वारा पुनर्विवाह करने पर उससे प्राप्त करती है, जो उसको उसके सम्बन्धियों द्वारा दिया गया है. उसके शुल्क तथा विवाहोपरान्त प्राप्त उपहार स्त्री धन कहा गया है।"

याज्ञवल्क्य कहते हैं कि "किसी स्त्री को अपने माता-पिता अथवा भाई द्वारा जो प्राप्त हुआ है अथवा जो अध्याग्नि द्वारा प्राप्त होता है अथवा अधिवेदनिका में प्राप्त उपहार आदि स्त्री की सम्पत्ति कहलाते हैं।"

मनु की भाँति कात्यायन ने भी छः प्रकार के स्त्री-धन का वर्णन करते हुए उसकी परिभाषा दो और बातों को सम्मिलित किया है

(1) कला से प्राप्त लाभ।

हिन्दू विधि

(2) कुमारी अवस्था में वधू के जाने के समय दिया गया तथा विधवावस्था के उपहार। इसके अतिरिक्त कात्यायन ने मन के द्वारा गिनाये गये दान एवं उपहारों को स्त्रीधन को । कोटि में रखा । कात्यायन के अनुसार पति, पुत्र, पिता और भाई किसी को भी स्त्री की विधि पूर्ण सम्पत्ति अर्थात् स्त्रीधन का स्तेमाल अथवा हस्तान्तरण करने का कोई अधिकार नहीं । यदि उनमें से किसी ने उसकी सम्पत्ति का प्रयोग उसकी स्वीकृति के बिना किया है तो उसको सम्पान ब्याज सहित लौटाना पड़ेगी और इस अनाधिकार प्रयोग के लिए राजा को अर्थ दण्ड भी देना होगा। जब पति किसी बीमारी से पीड़ित हो अथवा भीषण संकट में हो अथवा ऋण दाताओं द्वारा पीड़ित किया जा रहा हो, तो पत्नी अपनी सम्पत्ति स्वेच्छा से लगा दे किन्तु बाद में स्वयं लौटा दे।

इस प्रकार स्मृतिकारों के अनुसार विवाह काल में अग्नि-साक्षित्व के समय पिता आदि के द्वारा दिया गया धन, पति के घर पिता के घर से लाई जाती हुई कन्या को दिया धन, प्रतिरक्षा पिता, माता, भाई और पति द्वारा उपहार में, दिया गया धन, अधिवेदानिक, शुल्क, अन्वाधेय, स्नेही सम्बधियों द्वारा उपहार रूप में दिया गया धन स्त्री-धन होता है।

(ii) भाष्यकारों के अनुसार स्त्री-धन-मिताक्षरा विधि के अन्तर्गत निम्नलिखित को स्त्री धन माना गया है

हिन्दू विधि

(1) पिता, (2) माता, (3) पिता और (4) भाई द्वारा दिया गया धन, (5) अध्याग्नि, (6) आधिवेदनिक, (7) बन्धकों द्वारा प्राप्त धन, (8) शुल्क और (9) अन्वाधेय से प्राप्त धन। इसके अलावा वह सम्पत्ति जो, (1) दाय से, (2) विक्रय से, (3) विभाजन से, (4) अभिग्रहण से, (5) अन्य वैध साधनों से प्राप्त की जाती है, स्त्री धन कहलाती है।

वीर मित्रोदय मिताक्षरा के मत का समर्थन करता है कि स्त्री द्वारा धारित प्रत्येक प्रकार की सम्पत्ति 'स्त्री-धन' है। विवाद चिन्तामणि के अनुसार भी मनु के छः प्रकार के स्त्री-धन के अतिरिक्त अन्य प्रकार के स्त्री-धन होते हैं।

(iii) **न्यायिक निर्णय के अनुसार-ठाकुरदेई बनाम रायबालक राम** के वाद में प्रिवी काँसिल ने यह अभिनिर्धारित किया है कि "किसी स्त्री द्वारा पति की सम्पत्ति दाय रूप में प्राप्त करने पर वह स्त्री-धन नहीं होती है। **भगवान दीन बनाम मैनाबाई** के वाद में भी यही अभिनिर्धारित किया गया। **शिवशंकर बनाम देवी** के वाद में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि, "पुत्री द्वारा माता से प्राप्त सम्पत्ति उसका स्त्री-धन नहीं होती, चाहे वह सम्पत्ति माता का स्त्री-धन ही रही हो तथा ऐसी सम्पत्ति माता के दायदों को चली जाती है।

बलवन्त राव बनाम वागीराव के वाद में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि, "बम्बई में मान्य नियम यह है कि जो स्त्रियाँ मृतक के परिवार में विवाह

हिन्दू विधि

के द्वारा आई हैं उन्हें छोड़का अन्य स्त्रियों को पुरुष दाय में प्राप्त सम्पत्ति स्त्री-धन होती है।

राम कुवैर बनाम वाह कुँवर के वाद में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि "यदि हिन्दू अविभाजित परिवार की कोई विधवा भरण-पोषण के लिए अविभाजित परिवार की सम्पत्ति के किसी भाग पर बारह वर्ष से अधिक उत्तरभोगी दायदों के खिलाफ कब्जा रखती है तो वह सम्पत्ति उसकी स्त्री-धन होती है।" यदि सरकार द्वारा किसी हिन्दू विधवा को अनुदान में दी गई सम्पत्ति स्थायी अथवा दायभाग अधिकारों के साथ प्राप्त होती है तो वह स्त्री-धन होती है।

इस प्रकार स्मृतिकारों, भाष्यकारों तथा न्यायिक निर्णयों द्वारा दी गई परिभाषाओं से यही निष्कर्ष निकलता है कि स्त्री-धन स्त्री की ऐसी सम्पत्ति होती है जिस पर उसका पूर्ण स्वामित्व होता है तथा जो उसे विवाह के समय पिता-माता, भाई तथा अन्य सभी सम्बन्धियों से प्रीतवश तथा उपहारस्वरूप प्राप्त होती है। यह धन वधू को पतिगृह जाने के लिए प्रोत्साहित करने के लिए दिया जाता है।

स्त्री उत्तराधिकार अधिनियम 1956 की धारा 14 के अनुसार अधिनियम के प्रारम्भ होने के समय हिन्दू स्त्री के कब्जे में आई हुई प्रत्येक

हिन्दू विधि

सम्पत्ति स्त्रीधन कहलाती है। अतः प्रत्येक सम्पत्ति के विषय में उसको निर्वतन के पूर्ण अधिकार दिये गये हैं।

स्त्री-धन के स्रोत निम्नलिखित स्रोतों से अर्जित की गई सम्पत्ति स्त्री-धन कहलाती थी-

- (1) नातेदारों से उत्तर तथा उपहार में प्राप्त ।
- (2) अन्य जनों से उपहार तथा उत्तरदान में प्राप्त सम्पत्ति ।
- (3) विभाजन के फलस्वरूप प्राप्त सम्पत्ति ।
- (4) भरण-पोषण में प्राप्त सम्पत्ति ।
- (5) दाय में प्राप्त सम्पत्ति ।
- (6) यन्त्र-सम्बन्धी कला से अर्जित सम्पत्ति ।
- (7) समझौते में प्राप्त सम्पत्ति ।
- (8) प्रतिकूल कब्जा से प्राप्त सम्पत्ति ।
- (9) स्त्री-धन से खरीदी गई अथवा स्त्री-धन की आय की बचत से अर्जित की गई सम्पत्ति ।

(10) उपर्युक्त स्रोतों के अतिरिक्त अन्य स्रोतों से अर्जित सम्पत्ति (मुल्ला-हिन्दू विधि) । निम्नलिखित विभिन्न प्रकार के स्त्री-धन हो सकते हैं

हिन्दू विधि

स्त्री-धन के ऊपर स्त्री के अधिकार को उसकी प्रस्थिति के अनुसार निर्धारित किया जाता है।

(1) **अविवाहितावस्था:-**कोई भी स्त्री जो अविवाहित है तथा वयस्क है अपनी सम्पत्ति को किसी को भी हस्तान्तरण कर सकती है परन्तु यदि वह अवयस्क है तो वह अपनी सम्पत्ति का हस्तान्तरण नहीं कर सकती है।

(2) **विवाहितावस्था:-**विवाहितावस्था में स्त्री अपनी सौदायिक धन अर्थात् पिता व भाई द्वारा प्राप्त धन का निर्वचन पति की बिना अनुमति के भी कर सकती थी। ऐसा धन जो स्त्री पति से प्राप्त करती थी जिसे वह बिना पति के अनुमति के अन्य संक्रमण नहीं कर सकती थी ।

जहाँ पति पत्नी साथ रहते हैं वहाँ असौदायिक धन के निर्वचन के लिये पति की अनुमति आवश्यक नहीं है।

नियम यह है कि पति का पत्नी के स्त्री-धन पर कोई अधिकार नहीं होता है किन्तु आपत्तिकाल में वह स्त्री की सहमति के बिना भी उसके धन (स्त्री-धन) का उपयोग कर सकता था। दुर्भिक्ष, धर्म-कार्य तथा व्याधियाँ आदि की दशा में यदि पति के स्त्री-धन को लिया हो तो उसको लौटाना अथवा उसकी अदायगी करना पति की इच्छा पर निर्भर करता था।

विधवा अवस्था में विधवा:- अवस्था में स्त्री को सम्पत्ति के निर्वचन के सम्बन्ध में पूर्ण अधिकार प्राप्त है, सम्पत्ति चाहे पति की मृत्यु के पूर्व

हिन्दू विधि

अथवा बाद में प्राप्त की गई हो। इस अवस्था में समस्त सम्पत्ति उसकी अबाधित सम्पत्ति होती थी। अन्य संक्रमण स्वेच्छा से कर सकती थी।

देवदासियों अथवा नर्तकियों की सम्पत्ति न्यागमन सामान्यतः रुढ़ियों अथवा प्रचलित प्रथाओं के आधार पर होता था। उनके यहाँ माता और उनकी पुत्रियों में कोई सहदायिकी नहीं निर्मित होती। अतएव कोई पुत्री माता के विरुद्ध किसी प्रकार की सम्पत्ति में विभाजन का दावा नहीं कर सकती।

नारी सम्पदा के विषय में मूल पाठकार कात्यायन एवं वृहस्पति थे। वृहस्पति के अनुसार, "पति की मृत्यु के बाद पारिवारिक पवित्रता की रक्षा करते हुए अर्थात् सदाचार करने वाली विधवा उसके अंश को प्राप्त करे। किन्तु दान देने, बन्धक रखने अथवा विक्रय करने का अधिकार न हो।"

कात्यायन के अनुसार, "पुत्रहीन सती अपने श्रेष्ठजनों के साथ निवास करती हुई विधवा अपने जीवन भर (पति की सम्पत्ति का) संयम ढंग से उपयोग करे। उसके पश्चात् (पति) के दायद लेंगे।

हिन्दू विधि

प्रश्न:-2 दान के आवश्यक तत्वों को समझाइए! दान तथा वसीयत में अन्तर बताओ विवेचना करो !

उत्तर:- हिन्दू विधि के अनुसार दान का तात्पर्य एक व्यक्ति द्वारा किसी अन्य व्यक्ति के पक्ष में अपनी सम्पत्ति के बिना कोई प्रतिफल (Consideration) लिये त्याग करने से है, जिसका परिणाम उस सम्पत्ति में दाता के स्वामित्व को समाप्त करना, और आदाता (Donee) के स्वामित्व की सृष्टि करना होता है।

हिन्दू दान के 5 तत्व होते हैं-(1) दाता, (2) आदाता, (3) दान के योग्य वस्तु, (4) स्वीकृति, (5) कतिपय औपचारिकतायें।

दाता (Donor)-दान देने वाला दाता कहलाता है। इसमें प्रथमतः दान करने के लिये क्षमा का होना आवश्यक है। क्षमता (Capacity) से तात्पर्य दाता के स्वस्थ चित्त, और प्राप्तवय होने से है। दूसरे, दाता के पास दान में दी जाने वाली वस्तु को देने का अधिकार होना चाहिये। अधिकार से यह अर्थ है कि दान में दी जाने वाली वस्तु के ऊपर दाता का पूर्ण स्वामित्व है। ऐसा होने पर ही वह उस सम्पत्ति के सम्बन्ध में कोई लेन-देन कर सकता है।

आदाता (Donee)-दान प्राप्त करने वाला आदाता कहलाता है। आदाता की विशेषताओं के सम्बन्ध में केवल इतना ही कहा गया है कि उसका दान को स्वीकार (accept) करना आवश्यक है। आदाता की स्वीकृति के बिना दान

हिन्दू विधि

पूर्ण न होने से दान के समय उसका अस्तित्व में होना आवश्यक है। इस नियम को प्रिवी काँसिल ने टैगोर बनाम टैगोर के वाद में प्रामाणिक रूप से प्रतिष्ठित किया है। इस नियम में प्रस्तुत शताब्दी में अधिनियमों द्वारा परिवर्तन किया गया है, जिसका उल्लेख आगे किया जायेगा आदाता अक्षम व्यक्ति भी हो सकता है। उस स्थिति में दान उसकी ओर से किसी अन्य व्यक्ति द्वारा स्वीकार किया जा सकता है।

दान के योग्य वस्तु (Subject-matter of gift) - दान के योग्य वस्तु के सम्बन्ध में एक बात ऊपर लिखी जा चुकी है कि उस पर दाता का पूर्ण स्वामित्व होना चाहिये। इसके अनुसार मिताक्षरा और दायभाग दोनों शाखाओं में कोई हिन्दू अपनी पृथक् सम्पत्ति को दान में दे सकता है, चाहे वह जंगम हो अथवा स्थावर। जहाँ तक किसी व्यक्ति के अविभक्त कुटुम्ब में अविभक्त हित को दान करने का प्रश्न है, दायभाग में ऐसा हित दान में दिया जा सकता है। मिताक्षरा शाखा में कोई सहदायिक अविभक्त कुटुम्ब की अविभक्त सम्पत्ति में अपने हित को दान में नहीं दे सकता है, क्योंकि उसका हित बँटवारा न होने तक अनिश्चित रहता है। कोई नारी अपने स्त्रीधन की सम्पत्ति को दान में दे सकती थी। इस सामान्य नियम का अपवाद केवल उसकी दो प्रकार की सम्पत्तियाँ थीं-नारी को असम्बन्धियों से दान में प्राप्त सम्पत्ति, और उसकी स्वयं अपने श्रम और कौशल (labour and skill) से

हिन्दू विधि

अर्जित सम्पत्ति । इन सम्पत्तियों को नारी अपनी सधवावस्था (coverture) में पति की सहमति के बिना दान में नहीं दे सकती थी।

जहाँ तक साझे की सम्पत्ति को दान में देने का निषेध था वह इस आधार पर कि साझे की सम्पत्ति में दाता का अनिर्बन्धित स्वामित्व नहीं होता था यद्यपि पीछे चलकर यह नियम प्रतिष्ठित हो गया कि साझे की सम्पत्ति होने पर भी कोई व्यक्ति अपने अंश का दान कर सकता है, और आदाता उसके अंश को प्राप्त कर सकता है। साझे की सम्पत्ति के अतिरिक्त अन्य सम्पत्ति के सम्बन्ध में जो प्रतिबन्ध थे वे नैतिक ढंग के थे, और उनका अतिक्रमण करने से दान अविधिमान्य नहीं होता था।

स्वीकृति (Acceptance)- आदाता की स्वीकृति दान की पूर्णता के लिये कहाँ तक आवश्यक थी, इसके सम्बन्ध में मिताक्षरा और दायभाग में मतभेद है। मिताक्षरा के अनुसार दान की पूर्णता के लिये आदाता की स्वीकृति अनिवार्य है। इस स्वीकृति के बिना सम्पत्ति आदाता में निहित नहीं हो सकती है। दायभाग के अनुसार स्वीकृति आवश्यक नहीं है। इस सम्बन्ध में मिताक्षरा का मत अधिक समीचीन एवं तर्कपूर्ण है।

औपचारिकतायें (Formalities):- दान की पूर्णता सम्पत्ति को आदाता के कब्जे में देने से होती थी। यद्यपि विज्ञानेश्वर की मिताक्षरा में इस प्रकार के लेखांश हैं जिनसे प्रकट होता है कि बिना कब्जा दिये हुये भी दान पूर्ण हो

हिन्दू विधि

सकता था, किन्तु परवर्ती काल में कब्जे को दान का एक अनिवार्य अंग माना गया था। जंगम सम्पत्ति के दान में इसके अतिरिक्त किसी अन्य औपचारिकता की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। जहाँ तक स्थावर सम्पत्ति के दान में औपचारिकताओं का प्रश्न है, विज्ञानेश्वर ने लिखा है कि "भूमि छः औपचारिकताओं के द्वारा आदाता की होती है, ग्रामवासियों की, स्वजनों की, पड़ोसियों की, दायदों की सम्मति और स्वर्ण एवं जल के दान से।" इस कथन की व्याख्या करते हुये विज्ञानेश्वर ने लिखा है कि ग्रामवासियों की सम्मति दान के प्रख्यापन (declaration) के लिये थी, और पड़ोसियों की सहमति यदि भूमि की सीमा के सम्बन्ध में किसी प्रकार के झगड़े हों तो उनके निराकरण के लिये। स्वजनों एवं दायदों को सम्मति भी संभवतः इसी प्रयोजन के लिये थी। स्वर्ण और जल का दान, दान की कानूनी मान्यता के लिये नहीं, बल्कि दान की परिपुष्टि (affirmation) के लिये था। इस प्रकार विज्ञानेश्वर द्वारा कथित औपचारिकतायें दान के लिये अनिवार्य नहीं थीं। दूसरे शब्दों में उनका न सम्पादित होना दान की विधिमान्यता को प्रभावित नहीं करता था। इस प्रकार दान की प्रमुख औपचारिकता सम्पत्ति को आदाता के कब्जे में देना था। दान का लिखित होना आवश्यक नहीं था। यह मौखिक भी हो सकता था!

हिन्दू विधि

प्रश्न:-3 पिता के ऋणों को चुकाने के लिए पुत्र को 'पुनीत दायित्व' का क्या कर्तव्य है क्या पुत्र सभी प्रकार की ऋणों को चुकाने के लिए बाध्य है! समझाएं

उत्तर :- पिता के ऋणों को चुकाने का पुत्र का पुनीत कर्तव्य है। इस प्रख्यात सिद्धान्त की उत्पत्ति स्मृतियों से हुई है। स्मृतिकारों ने लिखा है कि ऋण अदा न करना भयंकर पाप है तथा ऋण चुकता न करने के दुष्परिणाम होते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार, परलोक में अपने पिता की आत्मा को कष्ट से बचाने के लिए पुत्र का यह धर्म होता है कि वह पिता के ऋण को चुकता कर दे।

इस प्रकार बृहस्पति ने कहा है कि यदि पिता अधिक समय तक जीवित नहीं है तो उसका ऋण पुत्रों द्वारा भुगतान करना चाहिए।

मिताक्षरा विधि के अनुसार यह पुत्र का पवित्र है कि वह पिता के ऋण को चुकाये, यदि ऋण परिवार की विधिक आवश्यकता तथा सम्पत्ति के लाभ के लिए लिया गया था, परन्तु यदि ऋण अवैध तथा अनैतिक उद्देश्य के लिये लिया गया था और ऋण के लिये जाने के समय पुत्र, पिता से पृथक् हो तो वे उस ऋण को भुगतान करने के उत्तरदायी नहीं हैं।

हिन्दू धर्मशास्त्रों में तथा स्मृतियों में बारम्बार इस बात पर बल दिया गया है कि ऋणी को ऋण का भुगतान करना चाहिए, इसके भुगतान न करने

हिन्दू विधि

से आत्मा दूषित होती है और परलोक में आत्मा को कष्ट होता है। पुत्र को पिता, पितामह से सम्पत्ति प्राप्त होती है, अतः पुत्र आदि पर उस सीमा तक ऐसे सभी नैतिक (व्यावहारिक) ऋणों को पूर्णतया भुगतान करने का दायित्व है। नारद ने कहा है कि पिता के ऋणों को पुत्र को चुकता करना चाहिए नहीं तो पिता नरकगामी होगा। आचार्य वृहस्पति ने तो आगे बढ़कर यह भी कहा है कि जो व्यक्ति अपने ऋणों का भुगतान नहीं करता वह अपने अगले जन्म में ऋणदाता के घर में स्त्री, दास अथवा सेवक के रूप में पहुँचेगा। पुत्र को स्वार्थ के वशीभूत नहीं होना चाहिए। उसका यह भरकस प्रयत्न होना चाहिए कि वह अपने पिता के ऋणों को चुका दे। यह उसका पुनीत कर्तव्य है। पुत्र का ऐसा दायित्व पिता के जीवन काल में तथा मृत्यु के पश्चात् भी होता है। यह कर्तव्य पौत्र और प्रपौत्र का भी है। उनके दायित्व में अन्तर यह है कि पुत्र के पिता के समस्त ऋण को (मूलधन और ब्याज दोनों को) चुकता करना चाहिए। पौत्र को पूरे मूलधन को। हिन्दू विधि में पुत्र और पौत्र का दायित्व व्यक्तिगत भी है। प्रपौत्र का मात्र उतना जितना संयुक्त कुटुम्ब की सम्पत्ति में उसका भाग है। न्यायालयों ने अपनी व्याख्या द्वारा हिन्दू विधि से इन नियमों में परिवर्तन किये हैं। अब पुत्र पौत्र और प्रपौत्र का दायित्व एक-सा है और इनमें से भी किसी, का भी व्यक्तिगत दायित्व नहीं है। उसका उत्तरदायित्व उनके पास संयुक्त कुटुम्ब की सम्पत्ति तक सीमित है।

हिन्दू विधि

ऋणदाता पिता के ऋण की वसूली के लिए उसके जीवनकाल में तथा मृत्यु के बाद भी समस्त संयुक्त परिवार की सम्पत्ति के विरुद्ध दावा दायर कर सकता है, वशर्ते ऋण अनैतिकता द्वारा कलंकित नहीं है। यदि ऋण अनैतिकता द्वारा कलंकित है तो पुत्र उसकी अदायगी के लिए उत्तरदायी नहीं होगा। पुनीत कर्तव्य का सिद्धान्त संयुक्त परिवार की सम्पत्ति में, के अभिव्यक्त हितों तक ही सीमित है, पुत्र का कोई व्यक्तिगत दायित्व नहीं होता है।

ब्रजनारायण बनाम मंगला प्रसाद के वाद में प्रिवी कौंसिल ने यह मत प्रकट किया है कि "पुत्रों का पिता के ऋणों को चुकता करने का दायित्व ऋण की समाप्ति तक होता है। उनका यह दायित्व संयुक्त तथा पृथक् दायित्व नहीं है। यह दायित्व केवल पिता की मृत्यु के पश्चात् नहीं वरन् पिता की जीवितावस्था में भी हो सकता है।

ए. आई, आर. 1959 सुप्रीम कोर्ट के केस में यह निर्धारित किया गया कि "पिता के विरुद्ध एक बार डिक्री पारित हो जाने के बाद पुत्रों को यह परम दायित्व हो जाता है कि वे ऋण की अदायगी में भाग लें। यदि डिक्री पारित हो जाने के बाद संयुक्त परिवार में विभाजन हो जाता है तो पुत्रों का सहभागीदारी सम्पत्ति में अंश ऋण की अदायगी के लिये उत्तरदायी है।

हिन्दू विधि

सिद्धेश्वर बनाम भुवनेश्वर प्रसाद के निर्णय में न्यायालय ने यह प्रतिपादित किया था कि मिताक्षरा पद्धति में किसी व्यक्ति की सन्तानों पर यह दायित्व होता है कि वह पिता के ऋण को अदा करे वह अनैतिकता से आबद्ध नहीं है। पुत्र का यह दायित्व व्यक्तिगत नहीं है। वस्तुतः दायित्व उसी सीमा तक होता है जिस मात्रा में सम्पत्ति दाय के रूप में प्राप्त की जाती है।

पन्नालाल बनाम नारायनी के निर्णय में यह प्रतिपादित किया गया है कि एक पुत्र विभाजन के बाद भी विभाजन के पूर्व लिये गये पिता के ऋण की अदायगी के लिए उत्तरदायी है यदि ऋण अव्यावहारिक नहीं था तथा उसके सम्बन्ध में विभाजन की कोई व्यवस्था नहीं की गई थी। अभी हाल में निगफा देसाई बनाम मदी बसपा के मामले कर्नाटक उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि पुत्रगणों पर पिता के ऋण को अदा करने का धार्मिक दायित्व है। यह सिद्धान्त इस अवधारणा पर आधारित है कि पिता द्वारा लिया गया ऋण व्यावहारिक था, यदि ऋण व्यावहारिक नहीं था तो यह सिद्धान्त लागू नहीं होगा। पुत्रगणों पर यह दायित्व पिता के जीवनकाल तथा उसकी मृत्यु के उपरान्त भी लागू होता है।

नान बच्चन बनाम सीताराम के वाद में इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने यह प्रतिपादित किया है पवित्र कर्तव्य (Pious Obligation) सिद्धान्त द्वारा संयुक्त परिवार सम्पत्ति के पुत्रों के हित संयुक्त परिवार में अपने पिता

हिन्दू विधि

के लिए उत्तरदायी है। प्रतिबन्ध यह है कि वह ऋण किसी अवैध या अनैतिक उद्देश्य के लिए न लिया गया हो। संयुक्त परिवार सम्पत्ति में ऋण दाता पुत्रों के अधिकार, स्वत्व और हित को विधिक रूप में कुर्क कर सकता है और सम्पत्ति का विक्रय कर सकता है।

पुत्र के दायित्व का वर्गीकरण निम्न प्रकार किया जा सकता है

- (1) विभाजन के पूर्व,
- (2) विभाजन के पश्चात्।

(1) विभाजन के पूर्व:- यह दायित्व दो प्रकार का हो सकता है

- (i) परिवार के लिए पिता द्वारा संयुक्त परिवार के प्रबन्ध अथवा कर्त्ता के रूप में लिया गया ऋण।
- (ii) पिता द्वारा व्यक्तिगत लिया गया ऋण।

पहले प्रकार के ऋण में पुत्र, पौत्र तथा प्रपौत्र जिम्मेदार होते हैं और संयुक्त परिवार की सम्पत्ति में केवल उसके हित की सीमा तक उत्तरदायी होते हैं।

दूसरे प्रकार के दायित्व में सहभागीदार सम्पत्ति में केवल पुत्र के हित तक ही सीमित होता है तथा पूर्ण संयुक्त परिवार की सम्पत्ति पर इस ऋण की अदायगी का दायित्व नहीं होता है।

हिन्दू विधि

(2) **विभाजन के पश्चात्**:- इस के ऋण-इस प्रकार के ऋणों को अदा करने का दायित्व पुत्रों पर नहीं होता है । परन्तु केशव नन्दन सहाय बनाम बिहार बैंक के वाद में पटना उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि जहाँ पिता ने विभाजन के पूर्व कोई ऋण लिया था किन्तु विभाजन के समय उसकी अदायगी के लिए कोई प्रावधान नहीं बनाया गया था, वहाँ उसके पुत्र ऋण की अदायगी के लिये विभाजन के बाद भी उत्तरदायी हैं

PGS National College